National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(61): 194-199
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

सुस्मिता कोरोथ एडवना
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
सेंट जोसेफ कॉलेज ऑफ कॉमर्स (स्वायत्त),
#163, ब्रिगेड रोड़, बेंगलुरु - 560025
कर्नाटक, भारत

Correspondence:
Dr. Susmitha Koroth Edavana
Assistant Professor,
Department of Hindi,
St. Joseph's College of Commerce (Autonomous)
#163, Brigade Road, Bengaluru-560025, Karnataka, India.

समाजिक बदलाव में अनुवाद की भूमिका

डॉ. सुस्मिता कोरोथ एडवना

समाज और अनुवाद के संबंध का प्रश्न आज नए सिरे से विचार की अपेक्षा रखता है। इस प्रश्न को महत्वपूर्ण मानने पर भी प्रायः इसे टाला जाता रहा है, जबकि समाज और अनुवाद का संबंध नया नहीं है। इस संबंध की जड़ें मानव समाज में काफी पुरानी हैं। अनुवाद विश्व भर में ज्ञान-विज्ञान की चेतना से मानवीय ज्ञानात्मक और भावात्मक संवादना को बदलता रहा है। अनुवाद से अपलब्ध होने वाले ज्ञान ने मनुष्य के समाजशास्त्र को एक देश की सीमा से निकालकर दूसरे देश तक पहुंचाया हैं।[1] प्राचीन ग्रीक या संस्कृत साहित्य, कला, दर्शन, धर्म दुनिया भर में किसके कंधों पर चढ़कर घूमता रहा ? इसका उत्तर है अनुवाद ने ही उसे फैलाया, बढ़ाया और चिरन्तनशील बनाया है। मानव का इतिहास साक्षी है कि अनुवाद कार्य ने सामाजिक चेतना के बदलाव, संघर्ष और टकराहट को प्रबल और सजग प्रक्रिया के रूप में जीवंत रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

समाज सतत पविर्तनशील और विकासशील होता हैं निरंतर विकास की यह प्रक्रिया प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, कभी धीमी तो कभी तीव्र गति से चलती रहती हैं। इसके स्वरूप-निर्माण में कई तरह के तत्व सक्रिय रहते हैं, जिनमें आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियां, सांस्कृतिक चेतना आदि प्रमुख होते हैं। किसी भी समाज की जन चेतना का निर्माण, विकास एवं परिवर्तन उसकी परिस्थितियों के अनुसार होता हैं। युगीन परिस्थितियों से उद्भूत इस चेतना की निर्मिति में जन सामान्य की भषा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। ज्ञान-विज्ञान जब वर्ग विशेष की भाषा में ही सीमित रहता है तब उसका प्रचार-प्रसार भी सीमित क्षेत्र तक ही होता है। किन्तु यदि वह ज्ञान लोक भाषाओं में उपलब्ध होता है तो ज्ञान के प्रसार से जनमानस में जागरूकता पैदा होती है। उसमें अपनी स्थितियों-अवस्थाओं, उनके हेतुओं-प्रयोजनों के प्रति सजगता उत्पन्न होती है। दूसरी ओर दुनिया के अन्य समाजों और राष्टों के बारे में जानकारी से उसकी समझ और दृष्टिकोण का विस्तार होता हैं। अपनी परंपराओं, चिंतनधाराओं, दर्शन, संस्कृति, इतिहास और साहित्य का वह अन्य समाजों की परंपराओं, दर्शन, संस्कृति, इतिहास और साहित्य के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर वह समझ पाता है कि उसकी परिस्थितियों का स्वरूप जैसा था, वह वैसा किस लिए था या उन परिस्थितियों का स्वरूप किन अवस्थाओं में भिन्न होता या भिन्न परिस्थितियों ने उस समाज या संसित को क्या रूप दिया होता।

वैचारिक आदान-प्रदान की चेतना से सामाजिक वैचारिकता में एक नई भूमि तैयार करने में अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस तरह सामाजिक परिवर्तन में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। किन्तु हमारे यहां अनुवाद की इस भूमिका को समझने-समझाने की चर्चा बहुत ही कम हुई है। अनुवाद के माध्यम से जिस नए ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हमारा परिचय होता है वह हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के निर्माण और निर्धारण में आंतरिक सक्रियता उत्पन्न करता है। अनुवाद की आवश्यकता अक्सर हमें तब पड़ती है जब हम अपरिचित क्षेत्रों में परिचित होना चाहते हैं और उन क्षेत्रों को किसी भाषा

विशेष में उपलब्ध नए-से-नए ज्ञान की प्रगति की निरंतर और अद्यतन जानकारी रखना चाहते हैं। सामाजिक बदलाव में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका अनेक तर्कों और उदाहरणों से पुष्टि होती है।

जब हम पश्चिम की ओर दृष्टि डालते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि मध्यकाल तक लगभग पूरे यूरोप में 'बाइबिल' का धार्मिक वर्चस्व था। संपूर्ण यूरोपीय सामाजिक और राजनीतिक जीवन रोम के चर्च के अधीन रहा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले व्यतियों जैसे गैलीलियो को केवल इसलिए दंडित होना पड़ा कि उन्होंने यह प्रमाणित किया कि पृथ्वी ब्रह्मांड का केंद्र नहीं है, बल्कि सूर्य उसके चारों ओर स्थिर है।

बाइबिल को पवित्र ग्रंथ मानने के कारण उसका अनुवाद करना वर्जित था। यद्यपि पुनर्जागरण आंदोलन की शुरुआत हो चुकी थी, फिर भी उसका प्रभाव मुख्यतः साहित्य और कला तक ही सीमित था। लेकिन जब ब्रिटीश शासकों ने चर्च से मुक्ति प्राप्त की और जर्मनी व इग्लैंड में बाइबिल के अनुवाद का स्वागत हुआ, तब समाज में व्यापक परिवर्तन की लहर उठी।

जर्मनी और इंग्लैंड अनुवाद को केवल धार्मिक उद्देश्य से ही नहीं देखना चाहते थे, बल्कि वे इसे अपने सामाजिक जीवन में उतारना भी चाहते थे। इसलिए प्रारंभिक ग्रीक-लैटिन साहित्य का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं था, बल्कि तत्कालीन अव्यवस्थित परिस्थितियों को सुधारना भी आवश्यक था।

जर्मन और अंग्रेज़ अनुवादकों ने समाज सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आम जनता को बाइबिन पढ़ने और रखने का अधिकार प्राप्त हुआ। इन ग्रंथों की व्याख्याएं केवल धर्म अथवा पादरियों के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि आमजन के हितों को ध्यान में रखकर की गईं।

यद्यपि इन सब घटनाओं के चलते यूरोपीय समाज को कठिन संघर्षों, रक्तपात और राजनीतिक मतभेदों से गुज़रना पड़ा, लेकिन परिणामस्वरूप् सामाजिक जीवन में गहरा परिवर्तन आया। इंग्लैंउ में चर्च ऑफ इंग्लैंड की स्थापना और बाइबिल के अंग्रेज़ी अनुवादों के माध्यम से ईसाई धर्म में प्रोटेस्टेंट मत की शुरुआत हुई, जिसने धर्म को अधिक तार्किक और सुगम बनाया।

लूथर और वाइक्लिफ़ जैसे विद्वानों ने जनता को बाइबिल की सच्चाई को जटिल धार्मिक बंधनों से मुक्त कर सरल रूप में समझाया। इस घटना ने यह बोध कराया कि जब धर्मग्रंथ आम जनता की भाषा में उपलब्ध होते हैं, तो धर्म का प्रचार-प्रसार कहीं अधिक प्रभावी और सार्थक होता है। यही कारण है कि पुनर्जागरण काल में बाइबिल के सबसे अधिक अनुवाद हुए, जितने अन्य किसी भी ग्रंथ के नहीं। दुनिया की अधिकतर भाषाओं में अनेक विद्वानों ने बाइबिल का अनुवाद किया।

यूरोप की उपनिवेशवादी शक्तियों ने सुदूर स्थानों पर उपनिवेशों की स्थापना के लिए ईसाई मत के प्रचार और बाइबिल के अनुवादकों को माध्यम बनाया और सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के आने तक विश्व के बड़े भूभाग को अपने अधीन बनाने में सफल हुए। यहीं नहीं, अंततोगत्वा वे अपने उपनिवेशों में अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रभुत्व जमाने में भी सफल हुए।[2] भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद ब्रिटिशों ने प्राचान भारतीय परंपराओं, ज्ञान-विषयों पर उपलब्ध समस्त महत्वपूर्ण साहित्य के महत्व को समझा था और इसीलिए उसका अंग्रेज़ी अनुवाद कराया। इस प्रकार वे यहाँ के समस्त ज्ञान-विज्ञान का लाभ उठाने में तत्पर रहे। सर विलियम जोन्स द्वारा स्थापित बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में प्राचीन भारतीय साहित्य की खोज तथा अनुवाद और प्रकाशन का कार्य आरंभ हुआ। सर मानियर विलियम्स ने कालिदास के "अभिज्ञान शाकुंतलम" का अनुवाद किया।[3] यूरोपीय समाज और साहित्य पर इस अनुवाद का प्रभाव कई रूपों में दृष्टिगत हुआ। मैक्समूलर, शॉपनहावर, श्लेगल आदि जर्मन विद्वानों द्वारा संस्कृत के वैदिक और लौकिक साहित्य के अनुवाद कार्य से भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में नई दिशा खुली और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का आरंभ हुआ।[4] भारतीय आर्य भाषाओं और यूरोपीय आर्य भाषाओं की तात्विक एकता को प्रतिपादित करने के लिए भी एक नई दिशा मिली।

दुनिया की ललित कलाओं को भी अनुवाद ने नई दिशा प्रदान की है। कर्नल कर्निंघम ने जिस पुरातत्व विभाग[5] की स्थापना की और जिसके अनुसंधान में नालंदा, तक्षशिला, वाराणसी, मोहनजोदड़ों, हड़प्पा आदि की खुदाई से भारत के गौरव पूर्ण इतिहास का ज्ञान प्राप्त हुआ उसमें भी अनुवाद मौन नहीं था। इस ज्ञान की रिपोर्टों के दुनिया की अनेक भाषाओं में भी अनुवाद प्रकाशित हुए और विश्व संस्कृति तथ सभ्यता के इतिहास को समझने के लिए नया दृष्टिकोण मिला।

ब्रिटिश शासक वर्ग एक ओर तो भारतीय ज्ञान से लाभान्वित हो रहा था दूसरी ओर औपरिवेशिक नतियों को सफल बनाने के लिए भारतीय जनता का 'ब्रेनवाश' करने में लगा था।[6] वह भारतीय जनता के मन पर पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता की श्रेष्ठता की धाक जमाने और भारतीय परंपराओं और संस्कृति के बृहतर पक्षों को दबाने के प्रयास में लगा था। भारत में उसने जो शिक्षा नीति लागू की, उसके माध्यम से उसने न केवल भारतीय जन को यूरोप का पिछलग्गू बनाने में सफलता पाई, बल्कि अंग्रेज़ी शिक्षा नीति के माध्यम से उसने भारतीय सृजनशीलता, वैयक्तिक मौलिकता और कल्पनात्मक रचनात्मकता का सिलसिलेवार ढंग से संहार करने में सफलता पाई। भारतीयों की संस्कृति और सभ्यता को पिछड़ी, गंवार और असभ्य बताते हुए उन्होंने यूरोपीय संस्कृति और ज्ञान को श्रेष्ठ और अनुकरणी

सिद्ध किया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय जन एक तरह की मानसिक दासता में जकड़ गया जिससे हमारा समाज आज भी मुक्त नहीं हो सका है।

आधुनिक भारतीय नवजागरण के प्रेणता इस नीति और इसके दूरगामी खतरनाक प्रभाव को समझ पा रहे थे। इसी कारण, 19वीं शताबदी के उत्तरार्ध काल में एक तरफ तो प्राचीन भारतीय ग्रंथां के अनुवाद का कार्य तेज़ी से शुरू हुआ और दूसरी ओर पश्चिमी ग्रंथों के अनुवाद का।

जीवन में दीनता की स्थिति का बाध (inferiority complex) और उससे उत्पन्न खेद को समाप्त करने के लिए आधुनिक ज्ञन-विज्ञान को जानना ज़रूरी है और ज्ञान-विज्ञान यदि आपनी भषा में उपलब्ध होगा तो उसका उपयोग सर्व सुलभ होगा। उसका उपयोग करके हम निर्माण कार्यों में उसका व्यवहार कर सकेंगे। इस तरह हमारे मन से पराश्रित होने का दैन्य समाप्त होगा। इस बात को भारतेन्दु आज से सौ वर्ष से भी अधिक समय पहले समझ रहे थे और भारतीय शिक्षित मात्र को समझाना चाह रहे थे भले ही हम आज इस सच्चाई से मुंह मोड़े रहें। भारतेन्दु जान रहे थे कि नव जागरण और आत्म-विश्वास के लिए ज़रूरी है कि हिन्दी में अनेक विषयों के अनुवाद किए जाएं और भाषा भाव एवं विषय की दृष्टि से संपन्न हो। वे अपनी दूर दृष्टि से समझ पा रहे थे कि भारतीय समाज के उत्थान में अनुवाद की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है।

हिन्दी के मध्यकाल में लोक भाषाओं के विकास और लोक जागरण को अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में देखने पर हम पाते हैं कि इस काल में संतों ने अपनी भाषा में संस्कृत और पालि के महान साहित्य, दर्शन, धर्म, संस्कृति और नीति चेतना के ग्रंथों का मुक्त मन से अनुवाद किया। उपनिषदों, महाभारत, रामायण और गीता के अनुवादों की एक विस्तृत परंपरा 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक दिखाई देती है। वैद्यक, ज्योतिष, कोशकाल, साहित्य, व्याकरण, धर्म, नीति आदि से संबंधित हिन्दी, जैन, बौद्ध, इस्लाम ग्रंथों के अनुवादों की एक विस्तृत परंपरा दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ, 'गीता' का हिन्दी का तीन-तीन अनुवाद हरिवल्लभ(1644), भगवानदास(1669) और आनन्द(1707) ने तीस साल के अंतराल में किया।[7] इस प्रकार इस अनुवाद ने इस काल में जनता के मन पर जीम हुई निराशा को हटाते हुए जीवन में आस्थावाद की नई किरण दिखाई, गीता ने इस मुझाए मनों को इतना सींचा कि कर्म प्रेरणा से जीवन जीने की नई चाह पैदा कर दी। मध्यकाल में श्रीमद्भागवत गीता के अनुवाद की जो परंपरा चल पड़ी वह आधुनिक भारत में तिलक, विनोबा, गांधी, योगी अरविंद तक लगातार प्रवाहमान रही।

गीता का कर्मयोग दर्शन स्वाधीनता संग्राम के सभी चरणों में भारतीय जन के लिए ज्योति स्तंभ बना रहा। इसी प्रकार महाभारत के विभिन्न अनुवादों ने रीतिकालीन सामंतीय मानसिकता की चेतना के प्रहार के बावजूद जीवन को संग्राम मानने की प्रेरणा जनमानस में बनाए रखी। इसी प्रकार मध्ययुगीन कविता में भक्तिधारा को जन चेतना में प्रखर गति से प्रवाहित करने में अनुवादों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। श्रीमद् भागवत गीता के विभिन्न अनुवाद महत्वपूर्ण भक्त-कवियों ने किए। सूरदास ने 'दशम स्कंध' का भावानुवाद किया। नन्ददास ने 'दशम स्कंध' का भाषा में अनुवाद किया। 1682 में पदुमन ने श्रीमद् भागवत गीता का संक्षिप्त अनुवाद 'कल्पतरू' के नाम से किया। साहित्य का पतन काल कहलाने वाले रीतिकाल में भी पुराणों, नीति ग्रंथों, ज्योतिष ग्रंथों, पंचतंत्र, हितोपदेश, सत्यनारायण कथा आदि के इतने अनुवाद हुए कि जनता अपनी सांस्कृतिक धरोहर से विछिन्न होने से बची रही। इसीलिए मुस्लिम और ब्रिटिश शासन काल में भारतीय संस्कृति की अंतः सलिला सूखने न पाई। बाहरी प्रभावों और दबावों को सहते हुए भी हमारे संस्कृतिकीकरण की दिशाएं अपने भीतरी बदलावों के साथ जीवित रह सकीं।

भारत में अंग्रेज़ी राज की स्थापना के बाद समाज में नवजागरण की जो नवीन चेतना प्रस्फुटित हुई उसमें अनुवाद की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। फ्रांसीसी राज्यक्रांति, यूरोपीय पूंजीवाद, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की शक्तियों से हम अनुवाद के माध्यम से ही परिचित हुए। कर्ल मार्क्स, रूसो, डार्विन और टॉलस्टाय के विचारों के साथ यूरोप में जिस नव चिंतन का आरंभ हुआ था उसे भारत तक पहुंचाने के कार्य के संबंध में भी अनुवाद को बार-बार स्मरण करना पड़ता है। इन अनुवादों से एक नये बुद्धिवाद का उदय हुआ तथा मध्ययुगीन जड़ता ध्वस्त हुई।[8] 19वीं शती के भारत में मानवमुक्ति की कल्पना के विकास में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही। क्या कारण है कि भारतेन्दु युग का प्रायः प्रत्येक लेखक पत्रकार और रचनाकार होने के साथ-साथ समर्थ अनुवादक भी है ? समझने की बात यह है कि अपने समाज में जागृति लाने के लिए यह सृजन कर्म से कम महत्व अनुवाद कर्म को न देते थे। भारततेन्दु ने संस्कृत के नाटक 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद क्यों किया ? इसका एकमात्र उत्तर है राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने के लिए। यहां यह भी यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता था। पर इस संदर्भ में यही कहना उचित होगा कि विषय वस्तु के साथ ऐतिहासिक सांस्कृतिक परंपरा जुड़ी हुई थी और यह नाटक संस्कृत की क्लासिक नाट्य परंपरा-सिद्ध था[9] जब हिन्दी नाट्यलेखन इस समय अपने आरंभिक काल में था। अतः इसकी प्रभावान्वित असंदिग्ध थी। एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि इस काल के लेखकों ने शेक्सपियर के नाटकों के ही अनुवाद क्यों किए ? अंग्रेज़ी का महान नाटककार होने के साथ-साथ शेक्सपियर नव जागरण की उस महान चेतना का वाहक था जो मनुष्य के मन और संस्कार को रूढ़ियों से मुक्ति की ओर ले जाती है।

भारतीय भाषाओं के बीच वैचारिक आदान-प्रदान के रास्ते भी अनुवाद ने खोलें। बंगला से बंकिम, शरद, माइकेल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्रनाथ, मराठी से हरिनारायण आप्टे, खंण्डेकर आदि से जो अनुवाद हिन्दी में हुए उन्होंने हिन्दी भाषा प्रदेशों में एक नया विचार-मंथन उत्पन्न किया और जनमानस सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर 'बंदे मातरम्' की अखंड चेतना की दिशा में चल पड़ी। यह समझने की ज़रूरत है कि हमारे राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण में अनुवाद ने युगांतरकारी कार्य किया है जिसे सही समझ के अभाव में सही संदर्भों में न पहचान पाने की भूल हम भारतीय अब तक करते आ रहे हैं। हमारे समाज में जो वैचारिक बदलाव लाए उनकी पृष्ठभूमि निर्मित करने में अनुवाद की प्रबल भूमिका को बुद्धिजीवी वर्ग ने सदा महसूस किया। स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जनता के भीतर से धर्मान्धता, आध्यात्मिक जड़ता, अज्ञानमूलक कठमुलावाद आदि बुराइयों को हटाने के लिए पश्चिम के नए ज्ञान से भारतीय जनता को परिचित कराने के लिए हैकल की क्रांतिकारी पुस्तक 'रिडिल ऑफ दि यूनिवर्स' का 'विश्व प्रपंच' नाम से अनुवाद किया। हैकल की इस पुस्तक ने पूरे एशिया के चिंतन में तहलका मचा दिया था। ऐसी पुस्तकों के अनुवाद के माध्यम से भारत में जो चेतना आई वह अंग्रेज़ी राज्य की देन न होकर पूरे एशिया और विश्व के नवजागरण से जुड़ी चेतना है। दुनिया भर के मुक्ति संग्रामों से हमें मुक्ति संग्राम की नई चेतना मिली। हमारी तरह दुनिया के बहुत से देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नीचे पिस रहे थे और स्वाधीनता तथा मुक्ति के प्रयास में लगे थे। इसीलिए रूसो और मार्क्स भी हमारे स्वाधीनता आंदोलन में वैचारिक भूमिका निभाते हैं। व्यापारिक नीतियों के माध्यम से ब्रिटिश शासन ने जो लूट शुरू की थी उसकी प्रेरणा नए अर्थशास्त्र के चिंतन से आई। इसके परिणामस्वरूप महावीर प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'संपत्ति शास्त्र' को आज भी देखा समझा जा सकता है।

अंग्रेज़ी रोमांटिक काव्य ने इटली, यूनान, फ्रांस तथा पश्चिमी एशिया के प्रभावों से अपने आप को अनुवादों के माध्यम से ही जोड़ा था। पश्चिमी साहित्य को पूर्व की देन भी कम न थी। जर्मन कवि गेटे ने कालिदास की 'शंकुंतला' को संबोधित करके कविता लिखी, एमैनस्कू ने कामदेव काव्य लिखा। यह बात चौंकाने वाली लग सकती है कि यूरोप के रोमांटिक आंदोलन[10] के पीछे सक्रिय प्रेरणाओं में भारतीय कवि कालिदास यूरोप का परिचय भी शामिल था। दारा शिकोह द्वारा किए गए उपनिषदों के अरबी-फारसी अनुवादों के फ्रांसीसी अनुवाद को रोमांटिक कवियों ने पढ़ा। 'अमरूक शतक' के अनुवादों ने उत्तर रोंमांटिकों को प्रभावित किया। गेटे, शिलर, बायरन, एसेटी स्विनबर्न आदि ने इन प्रभावों को अनुवादों के माध्यम से ही ग्रहण किया।[11]

बौद्ध धर्म पूरे एशिया में अनुवादों की एक जीवंत परंपरा के माध्यम से ही फैला और संसार भर में गीता तथा उपनिषद के ज्ञान को अनुवाद अपने ढंग से पहुंचाते रहे। पश्चिम का आधुनिक कवि-आलोचक टी. एस. इलियट बौद्ध और उपनिषद पर ज्ञान परंपरा से आंदोलन-उद्वेलित होता दिखाई देता है। पश्चिम के दार्शनिक कांटे, हीगल, नीत्से और सार्त्र आदि ने भी जिस वैचारिक उठान को पाया है उसमें भारतीय दर्शन परंपरा का योगदान नगण्य नहीं हैं।

वर्तमान संदर्भों में जब हम सामाजिक बदलाव में अनुवादों की भूमिका पर निगाह डालते हैं तो पाते हैं कि संसार के सभी विकसित देशों की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रगति में अनुवादों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। आज विज्ञान की तेज़ी से बदलती हुई दुनिया में प्रौद्यौगिकी के क्षेत्र में हो रहे नए से नए अनुसंधानों और आविष्कारों से संबंध रहने के लिए अनुवाद सबसे बड़ा साधन है। सभी संपन्न देशों के प्रौद्योगिकी एवं तकनीकविद अन्य देशों में हो रहे वैज्ञानिक अनंसंधानों और उनके संबंध में छपे आलेखों की जानकारी बिना किसी प्रतीक्षा के तुरंत पाना चाहते हैं ताकि उसके उपयोग का लाभ उठा सकें। दूसरी ओर आणविक शक्ति के युग में हर समर्थ राष्ट्र अन्य राष्ट्रों की सामाजिक गतिविधियों पर पूरी-पूरी निगरानी रखना चाहता है। ऐसी दशा में अनुवादक उसके लिए अपरिहार्य हो गया है। विकसित देशों के बड़े औद्योगिक घराने अपने क्षेत्र के विषयों का अनुवाद तुरंत उपलब्ध कराने के लिए तकनीकी एवं वैज्ञानिक अनुवादकों को नियुक्त करते हैं। अनुवाद के क्षेत्र में मशीनों का प्रयोग अधिकाधिक सुगम बनाने के प्रयास निरंतर जारी हैं। प्रतिस्पर्धा के युग में आज अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपने माल को खपाने के लिए अंतरराष्टीय कंपनियां अपने उत्पादों को विज्ञापनों की भाषाओं में उपलब्ध करना चाहती है और त्वरित गति से अनुवाद उनकी आवश्यकता बन गया है। कहना चाहिए कि आज हम जिस विश्व परिवार (global community) की बात कर रहे हैं या दूरियां जितनी घट रही है मानव समाज में अनुवाद की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण होती जा रही है।

इस तरह आज की बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में अनुवाद बड़ी व्यापक किंतु कठिन भूमिका का निर्वाह कर रहा है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ तेज़ी से विकसित होती हुई संकल्पनाओं और शब्दावली ने अनुवादों के सामने जटिल चुनौती प्रस्तुत की है। किंतु यह चुनौती अनुवाद के मार्ग की बाधा नहीं बनी हैं। विकासशील देश यदि वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति में विकसित देशों को मुंह जोहने की बजाए मौलिक अनुसंधान और विकास करना चाहते हैं तो उन्हें अनुवाद कार्य के महत्व और ज़रूरत को गंभीरता से समझना होगा और दुनिया भर में हो रहे अनुसंधानों, उनके बारे में छपे लेखों को केवल अंग्रेज़ी के माध्यम से जानने का इंतज़ार किए बगैर सीधे उन्हीं भाषाओं से संपर्क स्थापित करना होगा जिनके माध्यम से वे

अनुसंधान हुए हैं जापान और रूस जैसे देशों के उदाहरण हमारे सामने हैं।[12] उन्होंने भारतीय ग्रंथों का अध्ययन और विश्लेषण किया। इस प्रक्रिया से ज्ञान का आदन-प्रदान संभव हुआ और भारतीय संस्कृति की अंतरराष्टी पहचान बढ़ी। अनुवादकों के प्रयास से शिक्षा, शोध और सांस्कृतिक और सांस्कृतिक संवाद में महत्वपूर्ण योगदान हुआ।

(क) मुख्य संदर्भ :

Jacobsen, Eric. 1958. Translation: A traditional craft. Copenhagen: Nordisc Forlag.

Popovic, Anton. A. 1970. The nature of translation: Essays on the theory and practice of literary translation. The Hague: Mauton

Holmes, J. Lambert, J. and Lefever, A. (Eds.). 1978. Literature and Translation. Louvain: Acco.

(ख) सामान्य संदर्भ :

Edward Sapir, 1956. Culture, Language and personality. Los Angels: UCP

J. R. Firth. 1970. The tongues of men and speech. London: OUP IUP.

Srivastava, R. N., 1995. Applied linguistics. Delhi: Kalinga.

Rao, R. Raghunath (1990) The Art of Translation: A Critical Study. Bharatiya Anuvad Parishad: New Delhi.

S. K. Sareen, 1989. 'The Factor of Intertextuality in Translation' International Journal of Translation.

Tejaswini Niranjan (1993)) in Tejaswini Niranjana, P. Sudhir, Vivek Dhareshwar (eds.) Interrogating Modernity: Culture and Colonialism in India. Caucutta : Seagull.

(ग) हिन्दी संदर्भ :

1 कुमार सुरेश, 1986 अनुवद सिद्धांत की रूपरेखा, दिल्ली : वाणी प्रकाशन

2 राय, त्रिभुवन (सं) 1999 अनुवाद : स्वरूप और आयाम, इलाहाबाद : अनिल प्रकाशन

3 टंडन, पूरन चंद, 'अनुवाद' प्रतिष्ठित अनुवादक विशेषांक : जुलाई - सितंबर 1998 दिल्ली : भारतीय अनुवाद परिषद

4 हिन्द साहित्य का इतिहास, पृ. 489 एवं 534

5 विश्व प्रपंच की भूमिका (चिंतामणि) - 3 पृ. 199

6 बुद्ध चरित की भूमिका (चिंतामणि) - 3 पृ.113

7 सेठी, हरीश कुमार, ' अनु संधान', अनुवाद पत्रिका, वर्ष 21, संख्या 5, मई 1995, पृ. 46, कोलकत्ता

8 सेठी, हरीश कुमार, ' अनुवाद क्या है ?', अनुवाद पत्रिका, वर्ष 21, संख्या 5, मई 1995, पृ. 58, कोलकत्ता

9 टंडन, पूरन चंद, 'अनुवाद साधना, अनुवाद परिषद, दिल्ली : भारतीय अनुवाद परिषद

सन्दर्भ:

[1] अनुवाद के द्वारा विभिन्न प्रकार के ज्ञान ने मानव की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को एक देश की सीमाओं से परे ले जाकर अन्य देशों तक पहुँचाने का कार्य किया है।

[2] अनुवादकों ने केवल ग्रंथों का ही रूपांतरण नहीं किया, बल्कि उसमें अपनी रचनात्मकता और सांस्कृतिक प्रभाव को भी जोड़कर उसे और समृद्ध बनाया।

[3] सर विलियम जोन्स ने 1784 ई. में कलकत्ता में 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य भारत की प्राचीन साहित्यिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक धरोहर की खोज, अध्ययन और प्रकाशन था। यहीं से भारतीय ग्रंथों के व्यवस्थित अनुवाद और प्रकाशन की परंपरा का आरंभ हुआ। सर चार्ल्स विल्किन्स ने संस्कृत से 'भगवद्गीता' का अंग्रेज़ी अनुवाद कर इसे यूरोपीय जगत के सामने प्रस्तुत किया। इस प्रकार भारतीय ग्रंथों की वैश्विक पहचान बनी और भारतीय साहित्य को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समझने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

[4] मैक्समूलर, श्लाइगल, लेसी आदि जर्मन विद्वानों द्वारा संस्कृत के दार्शनिक और साहित्यिक ग्रंथों के अनुवाद कार्य से भाषाविज्ञान के क्षेत्र में एक नई दिशा खुली और तुलनात्मक भाषाविज्ञान की शुरुआत हुई।

[5] भारतीय पुरातत्व विभाग की स्थापना 1861 में **अलेक्ज़ेंडर कर्निंघम** ने की, जिन्हें "भारतीय पुरातत्व का जनक" कहा जाता है। इसका उद्देश्य भारत की प्राचीन और मध्यकालीन सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर का संरक्षण और अध्ययन करना था। कर्निंघम ने मंदिरों, स्तूपों और प्राचीन शिलालेखों का सर्वेक्षण और अनुवाद किया। उनके प्रयासों से भारतीय साहित्य और संस्कृति की अंतरराष्ट्रीय पहचान बढ़ी। विभाग ने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसी सभ्यताओं के महत्वपूर्ण तथ्य उजागर किए। इस प्रकार विभाग ने इतिहास, साहित्य और संस्कृति के अध्ययन में एक व्यवस्थित और स्थायी प्रणाली स्थापित की।

[6] सन् 1818 में एक यूरोपीय विद्वान ने भारतीय ग्रंथों का संग्रह और अध्ययन शुरू किया। इसका उद्देश्य भारतीय भाषा, साहित्य और दर्शन को समझना और यूरोप में उसका प्रचार करना था। इस प्रयास से भारतीय ज्ञान और संस्कृति का यूरोपीय विद्वानों तक प्रसार हुआ। ग्रंथों का संरक्षण और उनके अनुवाद की परंपरा को

नई गति मिली। इसके माध्यम से भारतीय और यूरोपीय भाषाओं तथा संस्कृतियों के बीच बौद्धिक और सांस्कृतिक संपर्क स्थापित हुआ। इस प्रकार यह कार्य भारतीय साहित्य और ज्ञान के वैश्विक प्रसार में महत्वपूर्ण साबित हुआ।

[7] इस विद्वान ने यूरोप में भारतीय ग्रंथों का अध्ययन और अनुवाद किया, ताकि भारत के प्राचीन ज्ञान को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया जा सके। उन्होंने उपलब्ध ग्रंथों का गहन विश्लेषण कर उन्हें यूरोपीय भाषाओं में प्रस्तुत किया। उनके प्रयासों से यूरोपीय विद्वानों को भारत के धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक जीवन की जानकारी मिली। जैन, बौद्ध और हिन्दू ग्रंथों की समृद्ध साहित्यिक परंपरा सामने आई। इस प्रक्रिया ने भारतीय ज्ञान और संस्कृति को स्थानीय सीमाओं से निकालकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाया। इस प्रकार यह कार्य भारतीय साहित्य और ज्ञान के वैश्विक प्रसार में महत्वपूर्ण साबित हुआ।

[8] यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि ब्रिटिश शासन के दौरान यूरोप से भारतीय ज्ञान और साहित्य का अध्ययन और प्रसार हुआ। 19वीं सदी में ब्रिटिश भारत में शिक्षा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के कई ठोस प्रयास किए गए। ब्रिटिश अधिकारियों और विद्वानों ने स्कूल, कॉलेज और संस्कृत पठन-पाठन संस्थानों की स्थापना की। उन्होंने भारतीय ग्रंथों का अध्ययन, अनुवाद और प्रकाशन कराया, जिससे भारतीय साहित्य और दर्शन यूरोप और भारत दोनों जगह पहुँचा। इस प्रक्रिया से भारतीय ज्ञान का संरक्षण हुआ और उसे आधुनिक और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में समझने का अवसर मिला। 19वीं सदी में यह प्रयास भारतीय शिक्षा और संस्कृति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ।

[9] विद्वानों और अनुवादकों के संयुक्त प्रयास से भारतीय ज्ञान और साहित्य का यूरोप में अध्ययन और अनुवाद संभव हुआ। इस सहयोग ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान और संस्कृति के आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया और इसे वैश्विक पहचान दिलाई।

[10] विद्वानों और अनुवादकों ने अपने कार्यों के माध्यम से धार्मिक स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया। यूरोप में लूथर और वाइक्लिफ़ ने बाइबिल का अनुवाद कर आम जनता को धर्म के बारे में स्वतंत्र रूप से पढ़ने और समझने का अवसर दिया। इस प्रक्रिया ने लोगों को पादरियों और चर्च के नियंत्रण से मुक्त किया। ग्रंथों का लोकभाषाओं में अनुवाद धार्मिक ज्ञान के प्रसार को संभव बनाता था। इसके माध्यम से समाज में धार्मिक सहिष्णुता और बहुलवाद को बल मिला। इस प्रकार विद्वानों और अनुवादकों का योगदान धार्मिक स्वतंत्रता और सोच की स्वतंत्रता की नींव रखने में महत्वपूर्ण रहा।

[11] अंग्रेज़ी शासकों ने अपने शासनकाल में विद्वानों के सहयोग से भारतीय ग्रंथों और ज्ञान का अध्ययन कराया। वेदिक ग्रंथों के विद्वानों ने इस अध्ययन में महत्वपूर्ण मदद दी। स्कॉट, फॉरमैन, काजू और लॉर्ड कलेउस जैसे यूरोपीय विद्वानों ने इन ग्रंथों का गहन विश्लेषण किया। उन्होंने भारतीय ज्ञान और साहित्य को समझने और प्रचारित करने में योगदान दिया। इस प्रयास से भारतीय ज्ञान को व्यवस्थित रूप से यूरोप और ब्रिटिश भारत दोनों में प्रस्तुत किया गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति और साहित्य का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसार संभव हुआ।

[12] अनुवादकों ने विदेशी विद्वानों को भारतीय ग्रंथों और ज्ञान से परिचित कराया। इसके माध्यम से यूरोपीय विद्वानों को प्राचीन भारत की संस्कृति और दर्शन की समझ मिली।